हृदय कान्त दीवान
hardy.dewan@gmail.com

शिक्षक कर्म व शिक्षक की इसके लिए तैयारी

सार

यह पर्चा शिक्षक व उनकी तैयारी के आयामों को खंगालता है। यह इस बात पर ज़ोर डालता है कि शिक्षक की तैयारी सिर्फ महाविद्यालय की चारदीवारी के भीतर नहीं होती उसकी मनोस्थिति व मानस पर समाज व ढांचे के गहरे प्रभाव पड़ते हैं। शिक्षक की तैयारी के कुछ महत्त्वपूर्ण आयामों को आज के शिक्षक की तैयारी व 'प्रबंधन' के विर्मश में नज़रअंदाज़ कर दिया जाता है, हालाकि वह बहुत महत्त्वपूर्ण हैं।

परिचय

शिक्षक कक्षा में क्या करता है और उसकी सम्पूर्ण कार्य क्षमता दोनों पर, शिक्षा के ढांचे में शिक्षक की स्थिति व शिक्षण कर्म के प्रति नजरिए व उसके समाज में दर्जे का बहुत असर होता है। शिक्षक के अहम व शिक्षकीय कार्य की मर्यादा, रूतबा व उसके कार्य करने के उत्साह के साथ-साथ इस कार्य में स्वायत्ता व स्व-जिम्मेदारी की भावना का काफ़ी हद तक क्षरण हो गया है। और यह क्षरण इस तरह बढ़ता जा रहा है कि शिक्षक की तैयारी व उसे और अधिक सिखाने के सभी प्रयास लगभग निरर्थक ही हो जाते हैं। चूंकि शिक्षक सीखने सिखाने में एक बहुत ही महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं, इसलिए उनके स्वयं के सीखने, सिखाने के उत्साह को बनाये रखने व लगातार काम करने की इच्छा पर ध्यान केन्द्रित करना आवश्यक है।

शिक्षक की क्षमतावर्धन का मसला शिक्षा क्यों, कैसी शिक्षा और इन प्रश्नों पर समाज व शासन की दृष्टि क्या है, आदि से भी जुड़ा है। किन्तु इन सभी बातों को नैपथ्य में रखकर हम इस संदर्भ यानि शिक्षक की तैयारी की राह में किए जा रहे वर्तमान प्रयासों, उनकी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि व इन दोनों के मंथन से निकल रहे पहलुओं पर विचार कर सकते हैं। हम इस पर्चे में अन्य इंगित पहलुओं के मद्देनज़र शिक्षक की तैयारी के वर्तमान मसलों पर नज़र डालेंगे।

कक्षा के काम के लिए तैयारी

कक्षा के लिए शिक्षक की तैयारी के कई आयाम हैं और इन्हें कई पहलुओं/आयामों पर समझना होगा। पहला आयाम शिक्षकीय ज्ञान का है। यानि बच्चों को दिया गया पाठ्यक्रम पढ़ा पाने के लिए शिक्षक को क्या-क्या सीख लेना चाहिए। इस विषय के बारे में सोचते समय बच्चों की उम्र, कक्षा, पृष्ठभूमि, उनकी भाषा व संस्कृति के साथ-साथ उनके समुदाय की आकाक्षाएँ और सामाजिक मसलों की समझ भी एक प्रमुख पहलू है। हालांकि, यह समझ, शिक्षक को बच्चों व समुदाय के साथ वास्तविक अंत: क्रिया के दौरान ही हासिल करनी है, लेकिन इसे हांसिल करने की जरूरत, ढंग व मानसिक तैयारी पहले होनी होगी। इसके अलावा जो विषय, पढ़ाया जाना है उसकी प्रकृति की समझ, उसके ऐतिहासिक विकास क्रम का अहसास, उसकी अवधारणाओं, प्रक्रियाओं और कौशलों में कुछ हद तक सक्षमता व प्रवीणता की जरूरत है। इसके साथ-साथ इंसान कैसे सीखते हैं, उन्हें सीखने के लिए कैसे प्रेरित कर सकते हैं व उम्र के अनुसार बच्चों का व्यवहार कैसा होता, सीखने का ढंग कैसा होता है और सीखने की राह में किस तरह की पगडंडिया अथवा प्रत्यक्ष रूप से अटकाव दिखने वाले मोड़ आते हैं आदि सभी, शिक्षकीय ज्ञान के आयामों का हिस्सा हैं।

दूसरा आयाम मान्यताओं, मूल्यों व भावनाओं का है। हालांकि इस पर विवाद हो सकता है कि क्या ये सब शिक्षकीय ज्ञान के दायरे में आते भी हैं अथवा उनसे विलग ही हैं। यह भी कहा जा सकता है कि इन सब के पीछे आधार तो तार्किक व दार्शनिक विश्वास ही हैं। और इनकी स्वीकार्यता मानवीय समाज की समझ, बराबरी के तर्कपूर्ण अहसास, सामाजिक अंत:क्रिया में पारदर्शिता व सहकार के महत्व को समझने से ही होगी। यह सब शिक्षक की औपचारिक तैयारी का हिस्सा नहीं बन सकता क्योंकि यह व्यापक सामाजिक प्रक्रियाओं का हिस्सा है। मान्यताओं, मूल्यों व भावनाओं जैसे मसलों पर हम दिमागी विवेचन की संभावना तो बना सकते हैं किन्तु 'मन व व्यवहार' बदलने का काम इस प्रक्रिया से होना मुश्किल है। हालांकि

कुछ लोग यह तर्क देते हैं कि इस संदर्भ में शिक्षक की तैयारी के दौरान ज्ञान की कसौटियों की समझ को विकसित करने का प्रयास, उसके लिए मान्यताओं को बनाने, आँकने व बदलने का आधार बनेगा। अत: शिक्षकों में इसके उपयुक्त विकास के लिए सघन, तीखी व तर्कपूर्ण बहसों व उससे एक ठोस दृष्टिकोण विकसित करने का लक्ष्य उनकी तैयारी के कार्यक्रमों में होना चाहिए।

किन्तु, इस विषय के महत्व को समझते हुए व इन मसलों पर समझ को बदले हुए व्यवहार में प्रतिबिंबित होने की मुश्किल को समझते हुए, लोग अब यह भी पहचानने लगे हैं कि मान्यताएँ व मूल्यों का पुन: उन्मुखीकरण मात्र तार्किक प्रक्रियाओं से नहीं होता। इसी लिए शिक्षक की तैयारी व उन्मुखीकरण के दस्तावेजों में यह कहा जाता है कि वयस्कों में इनका विकास, उन्हें अलग ढंग से व्यवहार करने के मौके देने व साथ ही उनसे अलग ढंग से व्यवहार के द्वारा ही हो सकता है। इस का एक निहितार्थ यह भी है कि ठीक ऐसी ही प्रक्रिया बच्चों में भी इन अपेक्षित रवैयों को विकसित कर सकेगी। किन्तु यह भी एक सीमित स्तर तक ही हो सकता है क्योंकि, अब यह भी समझा जाने लगा है कि मान्यताएँ, मूल्य व भावनाएँ आदि परिवार, समुदाय, पूरे समाज और उसके ताने-बाने व उनमें अंत:क्रियाओं से रचे जाते हैं। और इन सब को कुछ हद तक बदलने पर ही शिक्षकों के दृष्टिकोण बदले जा सकेंगे। यह समझ शिक्षक की तैयारी, उत्साह व दृष्टि संचयन व उसमें विकास को एक साथ देखने की कोशिश करती है। यह कल्पना है कि इन मसलों पर विमर्श व व्यवहार को मान्यता मिलने से धीरे-धीरे यह समाज में भी पहुंचकर व्याप्त हो पाएगी। इस मसले को समझने का महत्व इसलिए है कि इसका शिक्षक की तैयारी में सही प्रस्तुतिकरण, प्रत्यक्षीकरण व विवेचन स्वयं इसे ही पोषित करेगा और इसे ज्यादा संभव बनाएगा।

यह स्पष्ट है कि समाज में सही-गलत का फैसला व उसके आधार हमेशा मंथन में रहते हैं। न सिर्फ कौन सा ज्ञान सही है (खासतौर पर समाजशास्त्र व ऐसे विषयों में), किन्तु कौन सी बुनियादी मान्यताएँ व कौन से व्यवहार मानक व सही हैं, यह भी बदलता रहता है। इस सबके बीच शिक्षक से कई तरह की अंर्तविरोधी अपेक्षाएँ हैं। एक ओर तो यह है कि बच्चा बहुत महत्वाकांक्षी और प्रतिस्पर्धा में पनपने वाला बने, स्मार्ट व्यवहार करने वाला व स्थिति के अनुसार अपने हित की ओर झुका हुआ व्यवहार व निर्णय लेने वाला (pragmatic) व्यक्ति बने। दूसरी ओर यह अपेक्षा है कि बच्चे में सहकार, सहयोग, सहजता, करूणा व अन्य आदर्शवादी मूल्य विकसित हों। इनमें से कौन सा चुना जाए? दस्तावेजों पर तो यही कहा जाता है कि लक्ष्य, दूसरे समूह में आए मूल्य विकसित करना है। किन्तु यह काम बहुत ही कठिन है क्योंकि इसमें स्वार्थ और अहम की भावना से जूझना होगा। शायद एक बात तो यह समझनी व माननी होगी कि स्व-हित व बहुजन हित orthogonal नहीं होते। बहुजन हित में ही दीर्घकालीन स्व-हित भी है। असल में यह सब उलझे हुए मसले हैं और इन पर बहुत बहसें हुई भी हैं और होती भी रहेंगी। पर यह तो स्पष्ट ही है कि यदि इस तरह की समझ को किसी भी हद तक विकसित करना है तो इसके लिए शिक्षक के पास कम से कम संवाद करने की तो स्वतंत्र जगह होनी चाहिए। अगर उसके पास बच्चों को इस तरह से अनुभव देने का अधिकार भी न हो और उनके लिए अपने विवेक से समय के उपयोग की योजना बनाने की, सीखने के लक्ष्यों को आवश्यकतानुसार आगे-पीछे करने की स्वतंत्रता न हो तो शिक्षक की समझ के बावजूद यह सब कक्षा में कैसे हो पाएगा? और फिर मसला यह भी है कि शिक्षकीय ढांचे, यहाँ तक की समाज में भी शिक्षक के साथ हो रहे व्यवहार, उसकी कार्य स्थिति के अलौक में शिक्षक की इसके लिए तैयारी व उसमें इन सब का विकास कैसे होगा? कुल मिलाकर मूल्य व धारणा के आयाम पर काफी संशय है। इस मसले पर अस्पष्टता के कारण शिक्षक तैयारी में इसे संभव बनाने के लिए आवश्यक तत्वों को शामिल करने के बारे में बहुत ध्यान से सोचा भी नहीं जाता था।

तीसरा आयाम बच्चों के साथ व्यवहार करने का कौशल अख्तियार करने का है। बच्चों के साथ व्यवहार एकतरफा मामला नहीं है और सिर्फ बच्चे/बच्चों व शिक्षक/स्कूल के बीच का मामला भी नहीं। हम यह तो सिखा सकते हैं और शायद अभ्यास भी करवा सकते हैं कि बच्चों से आदर से पेश आना चाहिए। इसके लिए तालुकक आधार उदाहरण व दृष्टांत सब बनाए जा सकते हैं। किन्तु यदि पालकों व समाज में इसका आधार बिल्कुल अलग है तो कक्षा व स्कूल में इस अंतर के तनाव से कैसे निपटा जाएगा? और इस अंतर से जूझने के लिए शिक्षक की तैयारी कैसे हो पाएगी? और इसमें उसका आत्मविश्वास व कार्य कुशलता कैसे बनेगी? वैसे यह सवाल भी इस पहलू के संदर्भ में रहेगा ही कि क्या यह मात्र समझ से हल होगा या कुछ और भी चाहिए? क्या यह इसपर निर्भर है कि शिक्षक के मन में पालकों व समाज का कितना सम्मान है, उनकी बात को सुनने व समझने की कितनी इच्छा और उसके लिए कितना धैर्य है?

शिक्षा समाज की प्रथाओं व ज्ञान को बच्चों तक पहुँचाने का कार्य भी करती है और उसे आगे बढ़ाने, व्यापक करने व समाज की प्रथाओं व ज्ञान में आमूल परिवर्तन करने का प्रयास भी। बच्चों, उनकी सीखने की क्षमताओं, प्रवृत्तियों, मंशाओं व बचपन के प्रति एक संवेदना व समझ से सम्मत दृष्टिकोण, जो कि आज की प्रचलित समझ व प्रथा से बिल्कुल भिन्न है,

समाज में, शिक्षक में व स्कूल में कैसे स्थापित कर पाएंगे? क्या इसकी समझ, इसके प्रति सचेतता व ऐसा कर पाने की काबलियत के विकास के लिए शिक्षकों की तैयारी के कार्यक्रम में कुछ किया जा सकता है? कुछ किया जाता है?

चौथा आयाम शिक्षकों के संज्ञानात्मक विकास, अपने कार्य पर चिन्तन मनन, योजना बनाने की काबिलियत, व्यवस्था बनाने की क्षमता, व्यक्तित्व की प्रभावशीलता, समुदाय व अधिकारियों से संवाद कौशल जैसे पहलुओं का है। इसमें पारस्परिक वार्तालाप, आपसी सहकार, स्कूल व कार्य के प्रति स्वामित्व, जिम्मेदारी व पहल, बड़े व छोटे ढांचों में कार्य की समझ आदि शामिल हैं। जाहिर है कि यह सब एक दो-चार साल की संस्थाबद्ध पाठ्यचर्या में नहीं हो सकता शिक्षक तैयारी; परिप्रेक्ष्य, वर्तमान ढांचा और सवाल, तैयारी के ये आयाम साफ रूप से यह भी दिखाते हैं कि शिक्षक की भूमिका कक्षा की अंत:क्रिया से ज्यादा व्यापक है। किन्तु जहाँ एक ओर अकसर शिक्षक पूर्व तैयारी की पाठ्यचर्याओं में भी शिक्षक को एक सामाजिक परिवर्तन के अग्रदूत के रूप में भी व्याख्यायित किया जाता है, वहीं उसकी तैयारी सामाजिक व अन्य सभी व्यवस्था संबंधी मसलों को दरकिनार कर कक्षा की योजना व उसके क्रियान्वयन पर ही होती है। इसमें तो अकसर विषय की अवधारणाएँ व उसकी समझ के विकास पर भी पर्याप्त जोर नहीं होता। सिर्फ पढ़ाने, समझाने व प्रस्तुतीकरण बेहतर करने पर ही पूरे प्रयास का फोकस होता है। किन्तु शिक्षक की व्यापक तैयारी के लिए जाहिर है कि उसकी अंत:क्रिया न सिर्फ उसके छात्र-छात्राओं से अपेक्षित है वरन् पालकों व व्यापक समाज से भी। निष्कर्ष यह है कि शिक्षक की तैयारी सामाजिक, सांस्कृतिक व राजनैतिक वर्तमान में स्थित है और इसीलिए यह एक लगातार प्रक्रिया है, जिसमें एक व्यापक संदर्भ व व्यापक भागीदारी अपेक्षित है। यह एक ऐसी प्रक्रिया है जो शिक्षकीय जीवन के दौरान जारी रहेगी ही और इसकी कुछ तैयारी अभी उपलब्ध ढाँचों के बाहर भी होनी चाहिए।

वैसे अभी के प्ररिपेक्ष्य में भी हो रही शिक्षकों की तैयारी के भी बहुत से ढंग रहे हैं। इनमें से सिर्फ संस्थागत तरीकों पर भी नज़र डालें तो उसमें सेवा पूर्व व सेवारत तैयारी की संस्थागत प्रक्रिया व उसकी अनवार्यता, शिक्षा दिए जाने के बरअक्स बहुत अधिक पुरानी नहीं है। फिर भी इस पर बहुत से वैकल्पिक तरीके सोचे गए हैं और इनके आपसी संतुलन व क्रम पर भी बहुत मंथन हुआ है। इसमें से कौन-सा सही है और कौन-सा बेहतर इस पर सोच विचार करने की अवश्यकता है। यह भी सोचने की आवश्यकता है कि तैयारी के लिए कौन सी प्रक्रिया अपनाई जाए। क्या ज़्यादातर काम संस्थान में हो अथवा ज़्यादा काम स्कूल में ही हो और तैयारी व सुदृढ़िकरण का पूरा समय स्कूल में ही लगाया जाए? तैयारी के लिए फ़ैक्ट्री कौन हों? क्या स्कूल में पढ़ा रहे अनुभवी शिक्षक ही हों अथवा शैक्षिक शोध करने वाले ही हों या फिर मात्र कुछ ज़्यादा डिग्री हासिल किए हुए लोग हों? और ऐसे ही बहुत से और मसलें हैं, इन मसलों का अभी गहराई से विश्लेषण नहीं हुआ है हालांकि कई जगह इसकी बात हुई है।

शिक्षक की तैयारी के संदर्भ में एक और बड़ा प्रश्न यह है कि क्या प्रशिक्षण, शिक्षण प्रारम्भ करने से पूर्व शुरू हो और प्रशिक्षण का बड़ा हिस्सा सेवापूर्व समाप्त कर लिया जाए? यानि शुरू में, शिक्षक बनने से पहले ही पूरी तैयारी हो जाए और शिक्षक बनने की काबिलियत का प्रमाण-पत्र मिल जाए। अभी के मॉडल में ऐसा ही होता है और ठीक ऐसा ही अन्य तकनीकी व्यवसायों में होता है। हालांकि इनकी रचना में व अवधि में महत्त्वपूर्ण फ़र्क हैं, जिनके बारे में काफ़ी बात हो रही है और शिक्षक तैयारी के इस ढ़ंग को बेहतर करने के लिए कई प्रस्ताव भी दिए जा रहे हैं। इसके विपरीत एक बिल्कुल अलग ढ़ंग वह है जिसमें एक लम्बे शुरूआती प्रशिक्षण के स्थान पर पहले छोटे सा उन्मुखीकरण, उसके बाद कुछ समय तक भावी शिक्षक स्कूल में पढ़ाऐं और फिर लम्बा प्रशिक्षण हो। यानि एक शुरूआती संक्षिप्त परिचयात्मक तैयारी के बाद, कुछ साल पढ़ाने के अनुभव के बाद तैयारी या सुदृढ़िकरण का बड़ा हिस्सा आए। पढ़ाने के इस दौर में आप प्रशिक्षु शिक्षक के रूप में ही हैं और इसमें आप का मैंटर व आकलनकर्ता स्कूल आचार्य अथवा हैडमास्टर है। यह अनुभव आप की तैयारी का बड़ा हिस्सा है और इस अनुभव के बाद आप इसको औपचारिक कक्षाओं में शिक्षा के सिद्धांतों व अवधारणाओं के आइने में आंकेंगे व विश्लेषित करेंगे। इससे आपको अपने अनुभव को और शैक्षिक अवधारणाओं व सिद्धांतों को साथ-साथ समझने में मदद मिलेगी।

शिक्षक तैयारी की इन दोनों रूपरेखाओं के पक्ष-विपक्ष में तगड़ी दलीलें हैं। हम यहाँ इस की और ज्यादा व्याख्या नहीं करेंगे। जैसे हमने पहले भी इंगित किया एक और प्रश्न जिस पर भी अलग-अलग तरह के विचार हैं, वह शिक्षक की तैयारी के तरीके व उसके स्थल का है। प्रश्न यह है कि शिक्षक की तैयारी का अधिकांश (लगभग पूरा) हिस्सा बच्चों की कक्षा में व स्कूल में गुजरना चाहिए अथवा उसमें महाविद्यालय के अध्यापन व अध्ययन की भी काफी जगह हो? इसमें व्यवस्थित व गंभीर रूप से समुदाय के साथ अंत:क्रिया आदि तो अभी क्षितिज पर भी नहीं है। (यह प्रश्न सेवारत तैयारी के संदर्भ में भी पूछा जाता है, हालांकि उतनी तीव्रता से नहीं।)

दूसरा सवाल स्कूल के साथ रिश्ते का है। यह पहले प्रश्न से जुड़ा तो है लेकिन इस पर कुछ स्वतंत्र विचार की भी जरूरत है जिससे इसके प्रमुख लक्ष्य चिन्हित किए जा सकें व उन्हें हासिल करने का ढंग भी।

फिर यह प्रश्न है कि प्रशिक्षण ले रहे शिक्षक को स्कूल व कक्षाओं में क्या-क्या करना चाहिए? यानि स्कूल अनुभव कार्य के दौरान क्या-क्या होना चाहिए और कैसे? कक्षाओं में बच्चों के साथ अंत:क्रिया में कितना समय जाना चाहिए? कितना स्कूल की पूरी कार्य प्रणाली को समझने में? और क्या इसमें कुछ और हिस्से भी हैं। क्या वह स्वयं अपनी कक्षा अथवा पाठ योजना बनाएं और उसी का इस्तेमाल करें? क्या वह किसी अनुभवी शिक्षक द्वारा किए जा रहे शिक्षण का अवलोकन करें? क्या वह स्कूल के कार्यक्रम में शामिल हो कर उसके ढ़र्रे में चलें या एक दर्शक की तरह उसका अवलोकन कर, उस में कमी-बेशी और उसके गुण पहचानता रहे? क्या वह स्कूल के दौरान प्रधान पाठक व मेंटर शिक्षक के अधीन हैं या फिर उसका नियंत्रण महाविद्यालय से ही होगा और अगर दोनों का संयुक्त नियंत्रण है तो इनमें संतुलन कैसे होगा?

इस सब प्रश्नों व उनके संबंध में सम्भव चुनावों के कई तरह के मिश्रण प्रचलन में हैं। इन सब पर कई तरह के मत व तर्क हैं किन्तु सबसे बड़ा प्रश्न इन सूझबूझ से रचित कार्यक्रमों के क्रियान्वयन के ढंग व उनकी गुणवत्ता का है। जब से यह प्रशिक्षण कार्यक्रम शुरू हुए हैं व इनको महत्वपूर्ण व लाभदायक बताया जाने लगा है तभी से इन्हें अध्यापक बनने के लिए अनिवार्य काबिलियत के रूप में घोषित किया जाने लगा है। शिक्षक शिक्षा के महाविद्यालयों की गुणवत्ता के पोषण के लिए एक राष्ट्रीय काउन्सिल का गठन किया गया। यह इसलिए क्योंकि यह लगा कि विश्वविद्यालय अपने द्वारा प्रमाणित व नियंत्रित महाविद्यालयों में शिक्षक शिक्षा का स्तर ठीक नहीं रख पा रहे हैं और कम से कम कुछेक कालेज ऐसे खुल गए है जिनमें आवश्यक व्यवस्थाएं व नियमित कार्य बिल्कुल नहीं होता। बाकी बहुतों में अधूरे मन से कार्य करते बहुत से लोग हैं। इस प्रवृत्ति को रोकने के लिए बनी काउन्सिल की ज़िम्मेदारी नये महाविद्यालय खोलने को नियंत्रित करना व शिक्षक शिक्षा की गुणवत्ता को सुधारना था। यह विवाद का विषय हो सकता है कि क्या पाठ्यचर्या में कागज़ी विचारों में अत्याधिक सुधार के बाद भी कुछ विश्वविद्यालयों अथवा कुछ महाविद्यालयों में ही सही, क्या शिक्षक शिक्षा की गुणवत्ता बढ़ी है अथवा नहीं। पर इस बात पर कोई विवाद नहीं है कि काउन्सिल के बनने के बाद महाविद्यालयों की संख्या में अति तीव्र विस्तार हुआ है और इनमें व्यवस्थाओं की उपलब्धि व कार्यक्रम की गंभीरता का चिंताजनक क्षरण हुआ है। जैसे-जैसे निगरानी व प्रशिक्षण की अनिवार्यता पर जोर बढ़ा है वैसे-वैसे उसके सर्टिफिकेट के लिए मारा-मारी तो बढ़ी है लेकिन उसके कार्यक्रम में संचालन व अभ्यार्थियों की भागीदारी के स्वर दोनों में कोई बहुत अधिक परिवर्तन आया प्रतीत नहीं होता। इन प्रयासों से अथवा शिक्षक की योग्यता परीक्षा के आने से शिक्षकों की इज्जत में अथवा उनके प्रबंधन के ढंग में कोई अंतर नहीं आया प्रतीत होता है। उनका सामाजिक व प्रशासनिक ओहदा जस का तस है।

अंत में, शिक्षक तैयारी के संदर्भ में तीन प्रमुख सवाल जिन पर गहराई से सोचने की ज़रूरत है वे यह हैं कि:

1. शिक्षक व शिक्षण कर्म की स्थिति में अंतर आने तक शिक्षक की तैयारी अथवा शिक्षक योग्यता व पात्रता परीक्षा से शिक्षकीय कार्य कितना बेहतर हो सकेगा।
2. शिक्षक की तैयारी की प्रक्रिया कितनी शिक्षक बनने से पहले होनी चाहिए और कितनी शिक्षकीय कार्य करने के दौरान। इस व्यवस्था में यदि काफी हिस्सा बाद में होता है तो आकलन की प्रक्रिया कैसी होगी?
3. प्रशिक्षण के दौरान स्कूल के साथ रिश्ते क्या हों? जैसा हमने पहले भी कहा यह दूसरे प्रश्न से जुड़ा है लेकिन इस पर कुछ स्वतंत्र विचार की ज़रूरत है।